विहारकी महान् देन : तीर्थंकर महावीर और इन्द्रभूति

विहारकी महत्ता

विहारकी माटी बड़ी पावन है। उसने संस्कृतिके निर्माताओंको जन्म देकर अपना और सारे भारतका उज्ज्वल इतिहास निर्मित किया है। सांस्कृतिक चेतनाको उसने जगाया है। राजनैतिक दृष्टिसे भी भारतके शासकीय इतिहासमें विहारका नाम शीर्ष और स्मरणीय रहेगा। विहारने ही सर्वप्रथम गणतन्त्र (लोकतन्त्र)को जन्म दिया और राजनीतिक क्रान्ति की। यद्यपि वैशालीका वह लिच्छवियोंका गणतन्त्र आजके भारतीय गणतन्त्रकी तुलनामें बहुत छोटा था। किन्तु चिरकालसे चले आये राजतन्त्रके मुकाबलेमें वैशाली गणतन्त्रकी परिकल्पना और उसकी स्थापना निश्चय ही बहुत बड़े साहसपूर्ण जनवादी कदम और विहारियोंकी असाधारण सूझबूझकी बात है। सांस्कृतिक चेतनामें जो कुण्ठा, विकृति और जड़ता आ गयी थी, उसे दूरकर उसमें नये प्राणोंका संचार करते हुए उसे सर्वजनोपयोगी बनानेका कार्य भी विहारने ही किया, जिसका प्रभाव सारे भारतपर पड़ा। बुद्ध कपिलवस्तु (उत्तर प्रदेश)में जन्मे। पर उनका कार्यक्षेत्र विहार खासकर वैशाली, राजगृह आदि ही रहा, जहाँ तीर्थंकर महावीर व अन्य धर्मप्रचारकोंकी धूम थी। महावीर और गौतम इन्द्रभूति तो विहारकी ही देन हैं, जिन्होंने संस्कृतिमें आयी कुण्ठा एवं जड़ताको दूर किया, उसे सँवारा, निखारा और सर्वोदयी बनाया। प्रस्तुत निबन्धमें हम इन दोनोंके महान् व्यक्तित्वोंके विषयमें ही विचार करेंगे और उनकी महान् देनोंका दिशा-निर्देश करेंगे।

तीर्थंकर महावीर

तीर्थंकर महावीर जैनधर्मके चौबीस तीर्थंकरोंमें अन्तिम और चौबीसवें तीर्थंकर हैं। आजसे २५७३ वर्ष पूर्व वैशालीके निकटवर्ती क्षत्रियकुण्डमें राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला, जिनका दूसरा नाम प्रियकारिणी था, की कुक्षिसे चैत्र शुक्ला १३ को इनका जन्म हुआ था। राजा सिद्धार्थ ज्ञातृवंशी क्षत्रिय थे और क्षत्रियकुण्डके शासक थे। वैशाली गणतन्त्रके अध्यक्ष (नायक) राजा चेटकके साथ इनका घनिष्ठ एवं आत्मीय सम्बन्ध था। उनकी पुत्री त्रिशला इन्हें विवाही थी।

उस समय विहार और भारतकी धार्मिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। धर्मके नामपर अन्धश्रद्धा, मूढ़ता और हिंसाका सर्वत्र बोलबाला था। पशुबलि और नरबलिकी पराकाष्ठा थी। और यह सब होता था उसे धर्म मानकर। महावीर बचपनसे ही विवेकी, प्रज्ञावान् और विरक्त स्वभावी थे। उनसे समाजकी यह स्थिति नहीं देखी गयी। उसे सुधारा जाय, यह सोचकर भरी जवानीमें ३० वर्षकी वयमें ही घर, राज्य और संसारसे विरक्त होकर संन्यास ले लिया—निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली। १२ वर्ष तक जंगलोंमें, पर्वतगुफाओंमें और वृक्षकोटरोंमें समाधि लगाकर आत्म-चिन्तन किया तथा कठोर-से-कठोर अनशनादि तपोंका आचरण किया। यह सब मौनपूर्वक किया। कभी किसीके कुछ पूछने और उत्तर न मिलनेपर उन्हें पागल समझा गया। किन्तु वे तो निरन्तर आत्म-चिन्तनमें लीन रहते थे। फलतः उन्हें लोगों द्वारा पहुँचाये गये बहुत कष्ट भी सहने पड़े। उन्हें जब केवलज्ञान हो गया और योग्य शिष्य इन्द्रभूति गौतम पहुँच गये, तब उनका मौन टूटा और लगातार तीस वर्ष तक उनके उपदेशोंकी धारा प्रवाहित हुई। उनके पवित्र उपदेशों और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार-सम्पन्न उच्च जीवनका तत्कालीन वातावरण एवं उस वातावरणमें रहनेवाले लोगोंपर ऐसा असाधारण प्रभाव पड़ा, जो भारतके धार्मिक इतिहासमें उल्लेखनीय रहेगा। भारतीय संस्कृतिमें आगत कुण्ठा और जड़ताको दूर करनेके लिए उन्हें भागीरथी प्रयत्न करना पड़ा। पशुबलिका बड़ा जोर था। स्थान-स्थानपर यज्ञोंकी महिमा (अभ्युदय, स्वर्गफल, स्त्री-पुत्र-धनादिका लाभ) बतलाकर उनका आयोजन किया जाता था। यज्ञमें मृत पशुको स्वर्गलाभ होता है और जो ऐसे यज्ञ कराते हैं उन्हें भी स्वर्ग मिलता है। ऐसी विडम्बना सर्वत्र थी। महावीरने इन सबका विरोधकर हिम्मतका कार्य किया। उन्होंने अहिंसाका शंखनाद फूँका, जिसे प्रबुद्धवर्गने ही नहीं, कट्टर विरोधियोंने भी सुना और उसका लोहा माना। इन्द्रभूति और उनके सहस्रों अनुगामी अपने विरोधभावको भूलकर अहिंसाके पुजारी हो गये और पशुबलिका उन्होंने स्वयं विरोध किया। वैदिक यज्ञोंमें होनेवाली अपार हिंसापर महावीरकी अहिंसक विचार-धाराका अद्भुत, जादू जैसा, असर हुआ। महावीरने मनुष्यकी भी बलिका निषेध किया तथा मांसभक्षणको निन्द्य एवं निषिद्ध बतलाया। मांस-भक्षण करनेपर अहिंसाका पालन सम्भव नहीं है। प्रतीत होता है कि उस समय यज्ञोंमें हुत पशुओं या मनुष्यकी बलिसे उत्पन्न मांसको धर्म-विहित एवं शास्त्रानुमोदित मानकर भक्षण किया जाता था और वेद-वाक्योंसे उसका समर्थन किया जाता था। महावीरने इसे दृढ़तापूर्वक भूल और अज्ञानता बतलायी। दूसरे जीवोंको दुःख देकर एवं उन्हें मारकर उनके मांसको खानेसे धर्म कदापि नहीं हो सकता। धर्म तो आत्म-विकारों (काम-क्रोधादि) का जीतना, इन्द्रियोंको वशमें करना, जीवों पर दया करना, दान देना और आत्म-चिन्तन करना है। धर्म वह प्रकाश है, जो अपने आत्माके भीतरसे ही प्रकट होता है तथा भीतर और बाहरके अन्धेरेको मिटाता हुआ अभय प्रदान करता है। हिंसा अन्धकार है और वह अविवेकसे होती है। विचार और आचारमें लोग जितने अधिक अप्रमत्त-सावधान-विवेकवान् होंगे उतनी ही अधिक अहिंसा, निर्भयता और सम्यक् बुद्धि आयेगी।

महावीरने पूर्ण अहिंसाकी प्राप्ति तभी बतलायी, जब मन, वाणी और क्रिया इन तीनोंको अप्रमत्त रखा जाये। इसीसे उन्होंने स्पष्ट कहा है कि **'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा'** (त० सू० ६–११) अर्थात् कषायके कारण अपने या दूसरे जीवोंके प्राणोंको घात करना हिंसा है।

इससे प्रतीत होता हैकि महावीरकी दृष्टि बहुत विशाल और गम्भीर थी। वे सृष्टिके प्रत्येक प्राणी को अपने समान मानते थे और इसी से वे **'समभाव'** का सदैव उपदेश देते थे। उन्होंने सबसे पहले जो आत्मकल्याणकी ओर कदम उठाया और उसके लिए निरन्तर साधना की, उसीका परिणाम था कि उन्हें पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण बल और पूर्ण सुख प्राप्त हो गया था। तत्पश्चात् उन्होंने ३० वर्ष तक विहार करके जनकल्याण किया। इस अवधिमें उन्होंने जो उपदेश दिये वे प्राणी मात्रके कल्याणकारी थे। उनके उपदेशोंका चरम लक्ष्य जीवकी मुक्ति—कर्मबन्धनसे छुटकारा पाना था और समस्त दुःखोंसे मुक्त होना था। अपने आचरणको स्वच्छ एवं उच्च बनाने के लिए अहिंसाका पालन तथा अपने मन एवं विचारोंको शुद्ध और निर्मल बनानेके लिए सर्व समभावरूप **'अनेकान्तात्मक'** दृष्टिकोणके अपनानेपर उन्होंने बल दिया। साथ ही हित मित वाणीके प्रयोगके लिए **'स्याद्वाद'** पर भी जोर दिया। महावीरके इन उपदेशोंका स्थायी प्रभाव पड़ा, जिनकी सशक्त एवं जीवन्त परम्परा आज भी विद्यमान है। उनके उपदेशोंका विशाल वाङ्मय प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, तमिल, तेलुगु, महाराष्ट्री, गुजराती आदि भाषाओंमें निबद्ध देशके विभिन्न शास्त्र-भंडारोंमें समुपलब्ध है। राजकुमार विद्युच्चर, चौर्यकार्यमें अत्यन्त कुशल, अंजन चोर जैसे सहस्रों व्यक्तियोंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके उपदेशोंसे आत्मोद्धार किया, चन्दना जैसी सैकड़ों नारियोंने, जो समाजसे च्युत एवं बहिष्कृत थीं, महावीरकी शीतल छाया पाकर श्रेष्ठता एवं पूज्यता को प्राप्त किया। कुत्ते जैसी निन्द्य पर्यायमें जन्मे पशुयोनिके जीवोंने भी उनकी देशनासे लाभ लिया। प्रथमानुयोग और श्रावकाचारके ग्रन्थोंमें ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिनसे स्पष्टतया महावीरके धर्मकी उदारता एवं विशालता अवगत होती है। तात्पर्य यह कि तत्कालीन बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे सभीको अधिकार था कि वे महावीरके उपदेशोंको सुनें, ग्रहण करें और उनपर चलकर आत्मकल्याण करें।

चतुर्विध संघका गठन

महावीरने समाजका गठन बिल्कुल नये ढंगसे किया। उन्होंने उसे चार वर्गोंमें गठित किया। वे चार वर्ग हैं—१ श्रावक, २ श्राविका, ३ साधु (मुनि) और ४ साध्वी (आर्यिका)। प्रत्येक वर्गका संचालन करनेके लिए एक एक वर्गप्रमुख भी बनाया, जिसका दायित्व उस वर्गकी अभिवृद्धि, समुन्नति और उसका संचालन था। फलतः उनकी संघव्यवस्था बड़ी सुगठित ढंगसे चलती थी और आजतक वह चली आ रही है। तत्कालीन अन्य धर्म-प्रचारकोंने भी उनकी इस संघ-व्यवस्थासे लाभ लिया था। बुद्धने आरम्भमें स्त्रियोंको दीक्षा देना निषिद्ध कर दिया था। किन्तु णिग्गंथनातपुत्त महावीर की संघव्यवस्थाका आनन्दने जब बुद्धके समक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया और स्त्रियोंको भी दीक्षा देनेपर जोर दिया तो बुद्धने उन्हें भी दीक्षित करना आरम्भ कर दिया था तथा उनके संघकी संघटना की थी।

अन्तमें महावीरने मध्यमा पावासे मुक्ति-लाभ लिया।

गौतम इन्द्रभूति

इन्द्रभूति उस समयके महान् पंडित और वैदिक विद्वान् थे। जैन साहित्यमें जो और जैसा उल्लेख इनके विषयमें किया गया है उससे इनके महान् व्यक्तित्वका परिचय मिलता है।

आचार्य यतिवृषभ (विक्रमकी ५वीं शती) के उल्लेखानुसार इन्द्रभूति निर्मल गौतम गोत्रमें पैदा हुए थे और वे चारों वेदोंके पारगामी तथा विशुद्ध शीलके धारक थे। धवला और जयधवला टीकाओंके रचयिता आचार्य वीरसेन (विक्रमकी ९वीं शती) के[२] अनुसार इन्द्रभूति क्षायोपशमिक चार निर्मल ज्ञानोंसे सम्पन्न थे। वर्णसे ब्राह्मण थे, गौतमगोत्री थे, सम्पूर्ण दुश्रुतियोंके पारंगत थे और जीव-अजीव विषयक सन्देह को लेकर वर्धमान तीर्थंकरके पादमूलमें पहुँचे थे।

वीरसेनने[3] इन्द्रभूतिके परिचय-विषयक एक प्राचीन गाथा भी उद्धृत की है। गाथामें पूर्वोक्त परिचय ही निबद्ध है। इतना उसमें विशेष कहा गया है कि वे ब्राह्मणोत्तम थे।

---

१. विमले गोदमगोत्ते जादेणं इंदभूदिणामेणं।
चउवेदपारगेणं सिस्सेण विसुद्धसीलेण॥ —ति० प० १-७८

२. "....खओवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदमगोत्तेण सयल-दुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुवगय-वड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो।
—धव० पु० १, पृ० ६४

३. गोत्तेण गोदमो विप्पो चाउव्वेय-सडंग वि।
णामेण इंदभूति त्ति सीलवं बह्मणुत्तमो॥ —वही, पु० १, पृ० ६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरसेनके शिष्य और आदिपुराणके कर्त्ता आचार्य जिनसेन[1] (विक्रम की ९वीं शती) ने 'इन्द्रभूति' और 'गौतम' पदोंकी व्युत्पत्ति भी दिखाई है। बतलाया है कि इन्द्रने आकर उनकी पूजा की थी, इससे वे 'इन्द्रभूति' और गौ—सर्वज्ञभारतीको उन्होंने जाना-पढ़ा, इससे वे गौतम कहे गये।

जैन साहित्यके अन्य स्रोतोंसे[2] भी अवगत होता है कि आर्य सोमिलने मध्यमा पावामें जो महन् यज्ञ आयोजित किया था, उसका नेतृत्व इन्द्रभूति गौतमके हाथमें था। इस यज्ञमें बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् शिष्य-परिवार सहित आमंत्रित थे। इससे यह प्रकट है कि इन्द्रभूति निःसन्देह प्रकाण्ड वैदिक विद्वान् थे और उनका अप्रतिम प्रभाव था।

किन्तु आश्चर्य है कि इतने महान् प्रभावशाली वैदिक विद्वान्का वैदिक साहित्यमें न उल्लेख मिलता है और न परिचय। इसका एकमात्र कारण यही प्रतीत होता है कि इन्द्रभूति तीर्थंकर महावीरके शिष्य हो गये थे और वैदिक विचार-धाराका उन्होंने परित्याग कर दिया था। ऐसी स्थतिमें उनका वैदिक साहित्यमें कोई उल्लेख एवं परिचय न मिले, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

महावीरका शिष्यत्व

जैन साहित्यके उल्लेखोंसे विदित है कि तीर्थंकर महावीरको कैवल्य प्राप्त हो जानेपर भी ६५ दिन तक उनका उपदेश नहीं हुआ। इसका कारण था उनके अव्यर्थ उपदेशोंको संकलन—अवधारण करनेकी योग्यता रखनेवाले असामान्य व्यक्तिका अभाव। इन्द्रने अपने विशिष्ट ज्ञानसे ज्ञात किया कि तीर्थंकर महावीरकी वाणीको अवधारण करनेकी क्षमता इन्द्रभूतिमें है। पर वह वैदिक है और महाभिमानी है। इन्द्रने विप्र-वटुका स्वयं वेश बनाया और इन्द्रभूतिके चरण-सान्निध्यमें पहुँचा। उस समय इन्द्रभूति अपने ५०० शिष्योंसे घिरे हुए थे और वेदाध्ययनाध्यापनमें रत थे। विप्रवटु बेशधारी इन्द्र प्रणाम करके इन्द्रभूतिसे बोला—गुरुदेव, मैं बहुत बड़ी जिज्ञासा लेकर आपके पादमूलमें आया हूँ। आशा है आप मेरी जिज्ञासा पूरी करेंगे और मुझे निराश नहीं लौटना पड़ेगा। इन्द्रके विनम्र निवेदन पर इन्द्रभूतिने त्वरित ध्यान दिया और कहा कि वटो! अपनी जिज्ञासा व्यक्त करो। मैं उसकी पूर्ति करूँगा। इन्द्रने निम्न गाथा पढ़कर उसका अर्थ स्पष्ट करनेका अनुरोध किया—

पंचेव अत्थिकाया छज्जीव-णियाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य॥

—धवला, पु० ९, पृ० १२९ में उद्धृत।

इन्द्रभूति इस गाथाका अर्थ और उसमें निरूपित पारिभाषिक विषयोंको बहुत सोचनेपर भी समझ न सके। तब वे वटुसे बोले—कि यह गाथा तुमने किससे पढ़ी और किस ग्रन्थकी है? ब्राह्मण वटुवेषधारी इन्द्रने कहा गुरुदेव! उक्त गाथा जिनसे पढ़ी है वे विपुलगिरिपर मौनावस्थित हैं और कब तक मौन रहेंगे, कहा नहीं जा सकता। अतएव श्रीचरणोंमें उसका अर्थ अवगत करनेके लिए उपस्थित हुआ हूँ।

१. (क) इन्द्रेण प्राप्तपूजर्द्धिरिन्द्रभूतिस्त्वमिष्यते।
(ख) गौतमा गौः प्रकृष्टा स्यात् सा च सर्वज्ञभारती।
तां वेत्सि तामधीष्टे च त्वमतो गौतमो मतः॥ —आ० पु० २।५२-५४

२. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड १, परि० ७, पृ० १८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर इन्द्रभूति उसका अर्थ बतानेमें असमर्थ थे। इस असमर्थताको प्रकट करना भी उनके स्वाभिमान और प्रकाण्ड विद्वत्ताके प्रतिकूल था। फलतः वे ब्राह्मणवटुवेशधारी इन्द्रके साथ उनके गुरुसे शास्त्रार्थ करने की इच्छासे चल दिये और पीछे-पीछे उनके शिष्य भी चल पड़े। महावीर विपुलगिरिपर एक सभा स्थलमें ऊँचे आसनपर विराजमान थे। सभास्थल (समवसरण)के समक्ष मानस्तम्भ था। इन्द्रभूतिने ज्यों ही सभास्थलमें प्रवेश किया त्यों ही मानस्तम्भके देखते ही उनका अहंकार दूर हो गया और सारा ज्ञान निर्मल हो गया। उनके अहंकार-जन्य सारे विचार बदल गये और निर्मल-चित्त हो गये। सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेमें उन्हें देर न लगी। महावीरके पादमूलमें उनका शिष्यत्व ग्रहणकर निर्ग्रन्थ-दीक्षा ले ली और उनके प्रथम गणधर (पट्ट शिष्य) हो गये तथा चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय) एवं उत्कृष्ट संयमके धारक वे कुछ क्षणोंमें बन गये। इसे परिणामोंकी विचित्रता ही समझना चाहिए। इस तरह इन्द्रभूति महावीरके ऐसे महान् प्रभावशाली प्रथम शिष्य हैं, जिनके द्वारा उनके ३० वर्ष व्यापी उपदेश द्वादशांग श्रुतके रूपमें निबद्ध किये गये। अन्तमें इन्द्रभूतिने अपना समग्र श्रुत—महावीरके दूसरे शिष्य एवं अपने उत्तराधिकारी सुधर्म स्वामीको देकर १२ वर्ष तक केवली रहकर निर्वाण-लाभ लिया।

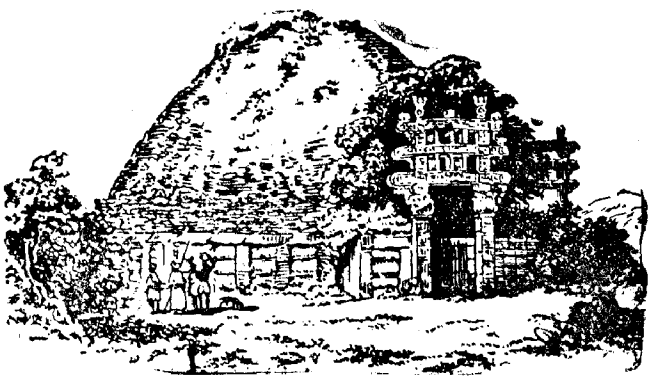

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org